॥ ओ३म् ॥

सृष्टिसंवत्

: लेखक :

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

सृष्टिसंवत्

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में 'वेदोत्पत्ति विषय' के अन्तर्गत प्रश्न उठा—"वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि?" वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गए?

इसके उत्तर में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—"अत्रोच्यते—एको वृन्दः, षण्णवतिः कोट्यो, अष्टौ लक्षाणि, द्विपञ्चाशत्सहस्राणि, नवशतानि, षट्सप्ततिश्चैतावन्ति १९६०८५२९७६ वर्षाणि व्यतीतानि, सप्तसप्ततितमोऽयं संवत्सरो वर्त्तत इति वेदितव्यम्। एतावन्त्येव वर्षाणि वर्त्तमानकल्पसृष्टेश्चेति।" एक वृन्द, छानवे करोड़, आठ लाख, बावन हज़ार, नव सौ, छहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में बीत गए हैं और यह संवत् ७७ (सतहत्तरवाँ) वर्त रहा है।"

वेदों के नित्य होने से वेदोत्पत्तिकाल से यहाँ वेदों के वर्तमान सर्ग में प्रादुर्भूत होने का काल अभिप्रेत है। ग्रन्थकार ने सृष्ट्युत्पत्ति तथा वेदोत्पत्ति का एक ही काल माना है। इसलिए यहाँ सृष्ट्युत्पत्ति से मानवोत्पत्ति समझनी चाहिए। वेद की आवश्यकता मनुष्य के लिए है, पशु-पक्षी या जड़ जगत् के लिए नहीं। ब्राह्मदिन का प्रारम्भ तो उसी क्षण से हो जाता है जब से परमाणुओं का संयोगविशेष प्रारम्भ होता है। किन्तु व्यावहारिक संवत् मानवोत्पत्ति से आरम्भ होता है। सृष्ट्युत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के पश्चात् मानव की उत्पत्ति होने तक पर्याप्त समय लगा होगा। सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने सत्यार्थप्रकाश (समु० ८) में लिखा है—"परम सूक्ष्म तत्त्वों का प्रथम ही जो संयोगारम्भ है, संयोगविशेषों से अवस्थान्तर दूसरी अवस्था को, सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल बनते-बनते विचित्र रूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहलाती है।" 'बनते-बनते बनी' इन शब्दों से स्पष्ट है कि ग्रन्थकार के मत में यह विराट्, विचित्र और वैविध्यपूर्ण सृष्टि मुसलमानों के अनुसार 'कुन' (हो जा) शब्द का उच्चारण होते ही पलभर में बनकर खड़ी नहीं हुई।

जैवी सृष्टि से पूर्व जीव के लिए अपेक्षित सामग्री का होना आवश्यक था। ग्रन्थकार ने इसका संकेत सत्यार्थप्रकाश (समु० ८) में किया है। वहाँ "मनुष्य की सृष्टि पहले हुई या पृथिवी आदि की?" इस प्रश्न के उत्तर में लिखा है—"पृथिवी आदि की, क्योंकि पृथिवी आदि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता।" इस व्यवस्था के अनुसार पहले वनस्पति, फिर पश्वादि (कृमि से हस्ती पर्यन्त) और अन्त में मनुष्य उत्पन्न हुए। प्राणी के प्रादुर्भाव से पूर्व धरती पर वायु, जल, लता, ओषधि, वनस्पति, फल, फूल, मूल आदि खाद्य पदार्थ तथा सूर्य, चन्द्रमा आदि अन्य आवश्यक

साधन उपलब्ध थे। इनके बिना प्राणिमात्र के लिए धरती पर रहना संभव न था। यजुर्वेद (३१। ६) के अनुसार **'संभृतं पृषदाज्यम् पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये'** अर्थात् परमेश्वर ने पहले दध्यादि भोग्य पदार्थों तथा वायु में गमन करनेवाले पक्षियों, सिंह-व्याघ्रादि वनैले पशुओं और नगरों व गाँवों में रहनेवाले गाय, घोड़े आदि पशुओं को उत्पन्न किया। इस प्रकार जड़ जगत् की रचना पूर्ण होने पर चेतन जगत् की और चेतन में भी क्रमशः सादी, क्लिष्ट और क्लिष्टतम प्राणियों की सृष्टि हुई। पशु-पक्षी का जीवन नैसर्गिक ज्ञान से चल सकता था। मनुष्य का काम केवल नैसर्गिक ज्ञान के सहारे नहीं चल सकता था। उसे वेद के रूप में ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता थी। इस प्रकार मानव-सृष्टि और वेदोत्पत्ति का एक ही काल ठहरता है।

यह कहा जाता है कि यहाँ सृष्टि की उत्पत्ति का प्रसंग ही नहीं है। प्रकरण का शीर्षक है—'अथ वेदोत्पत्तिविषयः' और प्रश्न भी 'वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि?' है। वेदोत्पत्ति-संवत् को बलात् सृष्टि-संवत् मानना असंगत है। परन्तु इसके लिए यदि कोई दोषी है तो स्वयं ग्रन्थकार, जिन्होंने उत्तर में यह कह दिया—'एतावन्त्येव वर्षाणि वर्त्तमानकल्पसृष्टेश्च'। जब तक इस वाक्यांश को प्रक्षिप्त सिद्ध न किया जाय तब तक यहाँ वेदोत्पत्ति-काल के साथ सृष्ट्युत्पत्ति-काल भी उपपन्न होगा। वस्तुतः ग्रन्थकार दोनों को एक मानते थे, इसीलिए उन्होंने ऐसा कहा। जैसाकि हम आगे देखेंगे, उन्होंने सत्यार्थप्रकाश (समु० ८) में केवल जगत् की उत्पत्तिविषयक प्रश्न के उत्तर में भी यही संवत् लिखा है।

इस सन्दर्भ में ग्रन्थकार का 'सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके····पढ़ते-पढ़ाते चले आए हैं' तथा 'बहीखाते में ····कहना ही क्या है' (ऋ० भा० भू० वेदोत्पत्तिविषय) यह लेख विचारणीय है। वर्षों की गिनती करते जाने और बही-खाते की तरह लिखने-पढ़ने का काम मनुष्य ही कर सकता था। इस लेख से यह भी स्पष्ट है कि सृष्ट्युत्पत्ति के साथ ही काल-गणना प्रारम्भ हो गई। इससे भी मानवोत्पत्ति और वेदोत्पत्ति का एक ही काल सिद्ध होता है।

रोज़नामचे की भाँति हम इसमें हर रोज़ एक दिन बढ़ाते चले आए हैं और घण्टे, दिन, सप्ताह, मास, वर्ष से लेकर युगों, चतुर्युगियों तथा मन्वन्तरों में काल को विभक्त कर हिसाब करते आए हैं। अतः युगों की गणना के द्वारा निर्धारित सृष्टि-संवत् ऐतिहासिक होने के कारण प्रामाणिक एवं सर्वथा विश्वसनीय है और मनुष्य की जन्म-तिथि नियत करने का एकमात्र विश्वसनीय साधन है। हमें वैज्ञानिक उपकरणों तथा परीक्षणों द्वारा उसका निश्चय करने की आवश्यकता नहीं है। जिसके पास जन्म-पत्री या स्कूल का सर्टिफ़िकेट नहीं होता, या जिसका नाम-पता नगरपालिका के रिकॉर्ड (जन्म-मृत्यु-पंजिका) में नहीं मिलता, उसी की आयु का निश्चय करने के लिए आयुर्वैज्ञानिक परीक्षण की आवश्यकता होती है। सत्यार्थप्रकाश (समु० ८) में हम पढ़ते हैं—

प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ?

उत्तर—एक अरब छानवे करोड़, कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों का प्रकाश होने में हुए हैं।

वहाँ (स० प्र० में) वेदोत्पत्ति का प्रसंग न होने पर भी सृष्ट्युत्पत्ति का वही काल निर्धारित किया है जो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदोत्पत्ति के प्रकरण में दिया है और यह भी लिखा है कि इसका व्याख्यान मेरी बनाई हुई 'भूमिका' में लिखा है, देख लीजिए। ऋ० भा० भू० में प्रश्न वेदोत्पत्ति-काल के विषय में था, परन्तु उत्तर वेदोत्पत्ति तथा सृष्ट्युत्पत्ति दोनों को लक्ष्य करके दिया गया। सत्यार्थप्रकाश में प्रश्न सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में पूछा गया, परन्तु उत्तर में सृष्टि और वेद दोनों का काल बताया गया। इससे तीन बातें स्पष्ट हैं—

१. ग्रन्थकर्त्ता के मत में सृष्ट्युत्पत्ति तथा वेदोत्पत्ति का एक ही काल है।

२. सृष्ट्युत्पत्ति से मानवोत्पत्ति अभिप्रेत है।

३. प्रत्येक अवस्था में ग्रन्थकार को एक अरब छानवे करोड़ कई लाख और कई सहस्र वर्ष सृष्टि-संवत् के रूप में अभिमत है।

परन्तु भुक्तकाल १९६०८५२९७६ और भोग्यकाल २३३३२२७०२४ वर्ष मानकर दोनों का योग करने पर सृष्टि की आयु ४२९४०८०००० वर्ष बनती है, जबकि एक कल्प या ब्राह्म दिन में ४३२०००००० वर्ष होते हैं।

वस्तुतः सृष्ट्युत्पत्ति का काल वह है जब सृष्टि-रचना का क्रम पूरा हो जाता है। 'अमुक मकान कब बना?' इस प्रश्न के उत्तर में उस दिन का निर्देश किया जाता है जिस दिन वह बनकर तैयार होता है; उस दिन का नहीं जिस दिन वह बनना शुरू होता है। बनकर तैयार होने पर ही गृहस्वामी उसमें प्रवेश करता है। जिस प्रकार शरीर से आत्मा का वियुक्त होना मृत्यु है, उसी प्रकार शरीर से आत्मा का संयुक्त होना जन्म कहाता है। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार आत्मा योनि के द्वारा गर्भाशय में स्थित हो दस मास (ऋ० ५। ७८। ८-९; अथर्व० १। ११। ६) तक वहाँ पूर्ण विकास होने के बाद बाहर आता है। उसी को जन्म होना कहते हैं। यद्यपि शरीर से आत्मा का संयोग ९-१० मास पूर्व हो चुका होता है तथापि पूर्ण विकास को प्राप्त होकर बाहर आने को ही बालक का जन्म-काल माना जाता है। बालक की आयु गर्भावस्था से नहीं, जन्मदिन से ही मानी जाती है। दिन का आरम्भ सूर्योदय से माना जाता है। यद्यपि अर्धरात्रि से ही शनैः-शनैः सूर्य का प्रकाश आरम्भ हो जाता है और एक-डेढ़ घंटा पहले तो पर्याप्त प्रकाश हो जाता है, तथापि दिन का आरंभ पूर्ण प्रकाश होने पर अर्थात् सूर्य के उदय होने = दिखाई देने पर ही माना जाता है। इसी प्रकार मानवोत्पत्ति के साथ सृष्टि-रचना पूर्ण होने के समकाल सृष्ट्युत्पत्ति का काल माना जाता है। इस प्रकार यद्यपि परमेश्वर ईक्षण द्वारा क्षोभ होने पर जब प्रकृति की साम्यावस्था भंग होकर वह व्यक्तावस्था की ओर अग्रसर होती है तो सृष्ट्युत्पत्ति की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, तथापि सृष्ट्युत्पत्ति तभी मानी जाती है जब वह जीवात्मा के भोग और अपवर्ग (भोगापवर्गार्थं दृश्यम्—योगसूत्र) का संपादन करने

की दृष्टि से पूर्ण हो जाती है और उसमें सर्वश्रेष्ठ प्राणी का प्रवेश हो जाता है। इसी न्याय से सृष्ट्युत्पत्ति तथा वेदोत्पत्ति का एक काल माना गया है।

परन्तु, जैसा कि पहले कहा गया है, सृष्ट्युत्पत्ति (सृष्टि-रचना के आरम्भ से अब तक का) काल एक अरब छानवे करोड़ आदि मानने पर सृष्टि (सर्ग) की कुल आयु ४२९४०८०००० वर्ष बनती है, जबकि इसका ४३२०००००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष होना सर्वसम्मत है। इन दोनों संख्याओं में २५९२०००० का अन्तर है जो ६ चतुर्युगियों के काल के बराबर है (४३२०००० × ६ = २५९२०००)। एक ब्राह्म दिन का परिमाण १००० चतुर्युगी है। ब्राह्म दिन में १४ मन्वन्तर होते हैं और एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी होती हैं। इस प्रकार एक ब्राह्म दिन में ९९४ (१४×७१) चतुर्युगी होती हैं। इस प्रकार भी ६ चतुर्युगियों का समायोजन (adjustment) अपेक्षित है। यहीं पर विद्वानों में मतभेद है। एक पक्ष ६ चतुर्युगियों के बराबर काल को आरम्भ में जड़ सृष्टि की रचना में लगाता है और दूसरा पक्ष भुक्त काल को १९७ करोड़····मानकर इस समस्या का समाधान करता है और ६ चतुर्युगियों के बराबर समय का १४ मन्वन्तरों के सन्धिकाल में समावेश करता है।

एक अरब सत्तानवे करोड़····सृष्टिसंवत् माननेवाले विद्वानो का मुख्य आधार 'सूर्यसिद्धान्त' है। वहाँ लिखा है—

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्यया तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥
ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः॥
कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः॥

—सूर्यसिद्धान्त १। १८, १९, २२

अर्थात्—इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। उसके अन्त में सत्ययुग की अवधि के वर्षों (१७२८०००) के समान एक सन्धिकाल होता है। इस प्रकार की १५ सन्धियों सहित १४ मन्वन्तर एक कल्प या सृष्टि में होते हैं।

सूर्यसिद्धान्त के प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि गणना करनेवाले ने भुक्त और भोग्य मन्वन्तरों की वर्षसंख्याओं का ही योग किया है। इस गणना में भुक्तकाल में ७ और भोग्यकाल में ८ सन्धियों का जोड़ना रह गया है। ग्रन्थकार के अनुसार भी ब्राह्म दिन में १००० चतुर्युग होते हैं। यह भी निर्विवाद है कि एक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युग होते हैं। इस प्रकार १४ मन्वन्तरों में (७१ × १४) ९९४ चतुर्युग बनते हैं। यहाँ प्रत्यक्ष ६ चतुर्युगों की न्यूनता है। यह ६ चतुर्युग परिमितकाल 'सूर्यसिद्धान्त' आदि आर्षग्रन्थों के अनुसार एक कल्प की १५ सन्धियाँ हैं। एक मन्वन्तर सन्धि का काल कृतयुग (१७२८०००) वर्ष के बराबर होता है। इस सन्धिकाल को १५ से गुणा करने पर

सन्धिकाल के २५९२०००० वर्ष होते हैं। यह काल अवशिष्ट ६ चतुर्युगों के बराबर है। इस प्रकार ७१ चतुर्युग परिमाण के १४ मन्वन्तरों की ९९४ चतुर्युग-संख्या में १५ सन्धियों के ६ चतुर्युग-काल को जोड़ने से ब्राह्म दिन की १००० चतुर्युग-संख्या उपपन्न होती है।

इस प्रकार उपरिनिर्दिष्ट व्यतीत १९६०८५२९७६ वर्ष-संख्या में विगत ७ सन्धियों के १२०९६००० वर्ष जोड़ने से विगत वेदोत्पत्ति या विगत सृष्टि का शुद्ध काल १९७२९४८७६ वर्ष उपपन्न होता है। इसी प्रकार भोग्यकाल की २३३३२२७०२४ की वर्ष-संख्या में भोग्य-काल की ८ सन्धियों की १३८२४००० वर्ष-संख्या जोड़ने से शुद्ध भोग्यकाल की २३४७०५१०२४ वर्ष-संख्या उपलब्ध होती है। अन्ततः शुद्ध भोग्य काल में शुद्ध भुक्तकाल जोड़ने से ४३२०००००० वर्ष का कल्प या ब्राह्म दिन सिद्ध होता है। अन्यथा १५ सन्धियों का काल न जोड़ने पर न तो १००० चतुर्युगों की संख्या पूरी होती है और न कल्प या ब्राह्म दिन की नियत वर्ष-संख्या उपलब्ध होती है।

इस मत को न माननेवालों का कहना है कि यह ठीक है कि ऋषि दयानन्द ने 'सूर्यसिद्धान्त' की गिनती ज्योतिष के प्रामाणिक ग्रन्थों में की है। परन्तु वह वसिष्ठ मुनिकृत 'सूर्यसिद्धान्त' है (ज्योतिषं वसिष्ठाद्युक्तम्) जो अब उपलब्ध नहीं है। सन्धिकाल को मानकर सृष्टि की आयु निकालने की बात मयासुर-रचित 'सूर्यसिद्धान्त' में लिखी है, इसलिए वह मान्य नहीं हो सकती।

वेदोत्पत्ति-काल के सन्दर्भ में ग्रन्थकार ने 'मनुस्मृति' के श्लोकों के बाद 'सूर्यसिद्धान्त' के दो श्लोक उद्धृत किये हैं—'इति सूर्यसिद्धान्तादिषु संख्यायते।' वर्तमान में प्राप्य मयासुररचित 'सूर्यसिद्धान्त' में ये श्लोक हैं नहीं और वसिष्ठ मुनिकृत 'सूर्यसिद्धान्त' का लोप हो चुका है। फिर, ग्रन्थकार ने ये श्लोक कहाँ से उद्धृत किए? खोज करने पर पता चला कि ये दोनों श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण के हैं। इन श्लोकों को 'शब्दकल्पद्रुम' तथा 'वाचस्पत्यभिधानम' नामक कोशों में 'संख्या' शब्द के अन्तर्गत ब्रह्माण्डपुराण के नाम से उद्धृत किया है। वहाँ द्वितीय श्लोक के द्वितीय पाद में 'शङ्खः पद्मं च' के स्थान पर 'शङ्खपद्मौ' पाठ मिलता है। 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय' के अन्तर्गत वसिष्ठादि विरचित ज्योतिष-ग्रन्थ को प्रामाणिक तथा 'शीघ्रबोध' व 'मुहूर्त्त चिन्तामणि' आदि को अप्रामाणिक माना है। मयासुर-रचित 'सूर्यसिद्धान्त' का कहीं विधान नहीं तो निषेध भी नहीं किया है। पर पुराणों की सर्वत्र घोर निन्दा करते हुए भी ग्रन्थकार ने ब्रह्माण्डपुराण का वचन प्रमाणरूप में उद्धृत किया है। परन्तु उन्होंने इसे 'सूर्यसिद्धान्त'-मूलक बताया है—यह अन्वेष्य है।

वेदोत्पत्तिकाल-सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर ग्रन्थकार ने एक-दो शब्दों में न देकर विस्तारपूर्वक सारा हिसाब फैलाकर एक अरब छानवे करोड़ इत्यादि निश्चित किया है। इतने महत्त्वपूर्ण विषय का विवेचन करते हुए गणित की प्रक्रिया में किसी भी स्तर पर इस विसंगति की ओर उनका ध्यान नहीं गया—यह बात भी समझ में नहीं आती।

कुछ विद्वानों के मत में तीन चतुर्युगियों का काल भुक्तकाल से पहले और तीन का भोग्यकाल के बाद जोड़कर छह चतुर्युगियों के अन्तर की समस्या का समाधान हो जाता है। परन्तु इस मान्यता का पोषक न कोई प्रमाण उपलब्ध है और न यह युक्तिसंगत है। इसके समर्थन में एक मन्त्र प्रस्तुत किया जाता है जो इस प्रकार है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं-धामानि सप्त च॥

यह मन्त्र ऋग्वेद (१०। ९७। १) तथा यजुर्वेद (१२। ७५) में आया है। इसके आधार पर कहा जाता है कि वनस्पतियाँ मनुष्योत्पत्ति से तीन दिव्य युग (महायुग) पूर्व उत्पन्न हुई थीं। परन्तु इस मन्त्र का यह अर्थ किसी वेदभाष्यकार ने नहीं किया। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के दशम मण्डल का भाष्य नहीं किया। परन्तु यजुर्वेद के १२वें अध्याय में उन्होंने इस मन्त्र का भाष्य लिखा है। वहाँ उन्होंने संस्कृत और हिन्दी में पदार्थ करने के अनन्तर भावार्थ में लिखा है—

"मनुष्य —जो पृथिवी और जल में ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जब वे तीन वर्ष पुरानी हो जाती हैं, तब उन्हें ग्रहण करके वैद्यक शास्त्र की रीति से सेवन करते हैं। वे सेवन की हुई सब मर्मस्थानों में व्याप्त होकर, रोगों को हटाकर, शारीरिक सुखों को उत्पन्न करती हैं।"

स्वामीजी ने अपने यजुर्भाष्य में इस मन्त्र का ऋषि 'भिषक्' और देवता (प्रतिपाद्य विषय) वैद्य बताते हुए लिखा है—

"मनुष्यैरवश्यमोषधसेवनं कृत्वाऽरोगैरवर्तितव्यमित्याह।"

ऋग्वेद में इस मन्त्र का ऋषि 'भिषगाथर्वणः' तथा देवता 'ओषधीस्तुतिः' लिखा है। स्पष्ट है कि मन्त्र का सम्बन्ध वैद्य, ओषधि तथा रोगोपचार से है। वेदोत्पत्ति अथवा सृष्ट्युत्पत्ति-काल का निर्धारण करने में इसका विनियोग नहीं किया जा सकता।

ग्रन्थकार की मान्यता है कि २३३३२२०७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने बाकी हैं। इस वाक्य से स्पष्ट है कि यह समय भोग्य काल का है। इतना समय बीतते ही सृष्टि का अन्त हो जाएगा। ग्रन्थकार ने यह भी लिखा है—"जब-पर्यन्त हज़ार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब तक ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत्, और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे।" इसका तात्पर्य है कि मनुष्य, उसका भोग्य जगत् तथा उसके लिए अपेक्षित ज्ञान सबका एकसाथ अन्त होगा अर्थात् सर्गकाल अथवा ब्राह्म दिन का अवसान हो जाएगा। ऐसी अवस्था में बाद में तो तीन चतुर्युगियों के जोड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता।

निष्कर्षतः हमारी मान्यता है—

१. जैवी सृष्टि से पूर्व भोक्ता जीव के लिए भोग्य के रूप में अपेक्षित सामग्री का होना आवश्यक था। सत्यार्थप्रकाश के अनुसार "मनुष्य की सृष्टि से पहले पृथिवी आदि की सृष्टि हुई, क्योंकि पृथिवी आदि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो

सकता।" इस व्यवस्था के अनुसार पहले वनस्पति, फिर पश्वादि और अन्त में मनुष्य हुए।

२. सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुए सत्यार्थप्रकाश (समु० ८) में लिखा है—"परम सूक्ष्म तत्त्वों का प्रथम ही जो संयोगारम्भ है, संयोगविशेषों से अवस्थान्तर दूसरी अवस्था को, सूक्ष्म से स्थूल-स्थूल बनते-बनते विचित्र रूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहलाती है।" 'बनते-बनते बनी' इन शब्दों से स्पष्ट है कि इस विराट्, विचित्र तथा वैविध्यपूर्ण सृष्टि की रचना पूर्ण होने में छह चतुर्युगियों का समय लगा।

३. 'मानवोत्पत्ति से पूर्व जगत् की रचना में ६ चतुर्युगियों के बराबर समय लगता है' इस मान्यता का पोषक कहीं कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु ग्रन्थकार का यह लिखना कि "एक ब्राह्म दिन में १४ मन्वन्तर (=९९४ चतुर्युगियाँ) भोग्यकाल है" यह संकेत करता है कि यह काल भोक्ता जीवों की अपेक्षा से है। ग्रन्थकार की यह भी मान्यता है कि एक हज़ार चतुर्युगियाँ व्यतीत होते ही महाप्रलय हो जाएगी। इस प्रकार इस पृथिवी पर भोक्ता जीवों का जीवन ९९४ चतुर्युगियों से अधिक नहीं। जब जैवी सृष्टि से पूर्व भोग्य सामग्री का होना निर्विवाद है और बनते-बनते उसकी रचना में पर्याप्त समय भी अपेक्षित है तो इस कार्य में ६ चतुर्युगियों के बराबर समय लगना भी संभव है। इस प्रकार यह मत अपेक्षित प्रमाण उपलब्ध न होने पर भी युक्तियुक्त तथा तर्क-प्रतिष्ठित कहा जा सकता है।

४. काल-गणना कैसे की गई है, इसके उत्तर में ऋषि ने लिखा है—"(१) सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज-पर्यन्त दिन-दिन गिनते और क्षण से लेके कल्पान्त की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं, अर्थात् परम्परा से सुनते-सुनाते, लिखते-लिखाते और पढ़ते-पढ़ाते आज-पर्यन्त हम लोग चले आए हैं। यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है। (२) जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते-घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य लोग तिथि-पत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले हैं, और यही इतिहास आज-पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एक-सा वर्त्तमान हो रहा है और समस्त पुस्तकों में भी इस विषय में एक ही प्रकार का लेख पाया जाता है।" इतिहास से यहाँ समस्त मंगल-कार्यों के प्रारम्भ में 'ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे इत्यादि' पढ़ा जानेवाला 'संकल्प' और पुस्तकों से पञ्चाङ्गरूपी पुस्तकें अभिप्रेत हैं।

वर्षों की गिनती करते जाने और बहीखाते की तरह लिखने-पढ़ने का काम तो मनुष्य ही कर सकता था। इसलिए जब यह कहा जाता है कि सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में वर्त्तमान ब्राह्म दिन के एक अरब छानवे करोड़ इत्यादि वर्ष व्यतीत हुए हैं तो इसे मनुष्य द्वारा गिना हुआ काल समझना चाहिए। इसमें ६ चतुर्युगियों का वह समय शामिल नहीं है जो मनुष्य के प्रादुर्भूत होने से पहले बीत चुका था। उसे जोड़ने से एक अरब सत्तानवे करोड़ इत्यादि वर्ष बन जाते हैं।

सृष्टिसंवत् अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है। पूर्वाग्रह से मुक्त होकर

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने की भावना से मिल-बैठकर विचार करना विद्वानों का कर्त्तव्य है। हमने जो कुछ ऊपर लिखा है, उसके आधार पर हमारा निश्चित मत है कि —

(१) मानवोत्पत्ति तथा वेदोत्पत्ति समसामयिक हैं और उसका काल एक अरब छानवे करोड़ कई लाख और कई सहस्र इत्यादि वर्ष है।

(२) सृष्ट्युत्पत्ति (जिसमें मानवोत्पत्ति से पूर्व की सृष्टि-रचना का काल भी शामिल है) का काल एक अरब सत्तानवे करोड़ कई लाख कई सहस्र इत्यादि वर्ष है।

अवान्तर प्रलय

ऋ० भा० भू० के वेदोत्पत्ति विषय के अन्त में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—"जब-पर्यन्त हज़ार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब-पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक, यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे।" इस पर महामहोपाध्याय पं० युधिष्ठिर की यह टिप्पणी विचारणीय है—

इस भाषा के लेख से यह भ्रान्ति होती है कि ग्रन्थकार प्रतिमन्वन्तर अवान्तर प्रलय नहीं मानते। परन्तु यह ध्यान रहे कि यह लेख संस्कार भाषा में नहीं है।

रहा अवान्तर प्रलय का प्रश्न। इस विषय में ग्रन्थकार का स्पष्ट मत है। वे महाप्रलय और अवान्तर प्रलय दोनों मानते हैं। इसके लिए सत्यार्थप्रकाश (समु० ८) का निम्न सन्दर्भ देखना चाहिए—

"जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि-क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है तब अग्न्यादि क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल-क्रम से सृष्टि होती है। अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहाँ-जहाँ तक प्रलय होता है, वहाँ-वहाँ से सृष्टि होती है।"

यहाँ स्पष्ट ही महाप्रलय और खण्डप्रलय का वर्णन ग्रन्थकार ने किया है। "जहाँ-जहाँ तक प्रलय होता है, वहाँ-वहाँ से सृष्टि होती है" वाक्य अवान्तर या खण्ड प्रलय का ही बोधक है। महाप्रलय में तो सम्पूर्ण स्थूल जगत् का प्रलय होता है। प्रकृति साम्यावस्था तक पहुँच जाती है। महाप्रलय और अवान्तर प्रलय में वेदोत्पत्ति की प्रक्रिया में शास्त्रकारों ने भेद माना है। महाप्रलय के पीछे ऋषियों के हृदय में परमेश्वर द्वारा वेद प्रेरित होते है, और अवान्तर प्रलय के पश्चात् सुप्तप्रबुद्धन्याय से वेदों का प्रकाश होता है। अर्थात् मनुष्य जिस-जिस ज्ञान से युक्त रात्रि में सोता है, वह ज्ञान उसे दूसरे दिन प्रातः उठने पर भी प्राप्त होता है। इसी मन्वन्तर प्रलय के अन्त में जिनको वेदों का ज्ञान था, वह ज्ञान उन्हें अगले मन्वन्तर के आरम्भ में स्वतः प्राप्त होता है। महाप्रलय की स्थिति पुनर्जन्म के सदृश होती है। जैसे पुनर्जन्म में माता-पिता आदि से पुनः ज्ञान ग्रहण करना पड़ता है, वैसे ही महाप्रलय के पश्चात् सृष्टि के आरम्भ में नये रूप में परमेश्वर से ज्ञान-प्राप्ति की अपेक्षा होती है।